|| श्रीहरिः ||

**वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |**
**देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||**

## || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 6: आत्मसंयमयोग**

3/4 (श्लोक 24-32), रविवार, 13 जुलाई 2025

**विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/3tGAQ6-Pvw4

# परम योगी के लक्षण

मधुराष्टकम्, श्रीकृष्णाष्टकम्, माँ सरस्वती वन्दना और दीप प्रज्वलन के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

हम अध्याय छ: आत्मसंयमयोग का मनन कर रहे हैं। अभी ऋषिकेश में गीता साधना शिविर सम्पन्न हुआ। परम पूज्य स्वामी श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज ने भी इसी अध्याय का महत्त्व बताया। जब किसी साधक को साधना आरम्भ करनी होती है तो इसी अध्याय से आरम्भ किया जाता है। इस अध्याय में व्यक्ति को तन, मन और इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में लाने की प्रक्रिया विस्तार से समझायी गयी है। आत्मसंयम के  बिना अध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

अर्जुन के मन में युद्ध के कारण वैराग्य उत्पन्न हो रहा है तो श्रीभगवान् ने कर्म-संन्यास की बात उनसे कही। तीसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने बताया कि योगी को कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह जाती परन्तु फिर भी वह जनकल्याण हेतु निरन्तर कार्यरत रहता है।

पाँचवें अध्याय में कही बातों का विस्तार करते हुए अध्याय छह में श्रीभगवान् ने कहा-

**श्रीभगवानुवाच**
**अनाश्रितः(ख्) कर्मफलं(ङ्), कार्यं(ङ्) कर्म करोति यः।**
**स सन्न्यासी च योगी च, न निरग्निर्न चाक्रियः॥6.1॥**

जो व्यक्ति कर्म को उसके फल पर आश्रित हो कर नहीं करता, इस काम से मुझे क्या मिलेगा? यह न सोचते हुए अपने कर्म करता है एवं केवल परम तत्त्व की प्राप्ति ही उसका उद्देश्य हो, ऐसा व्यक्ति ही योगी है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया कि योगी और संन्यासी की बहिरङ्ग अवस्था भले ही अलग हो पर दोनों की अन्तरङ्ग अवस्था एक जैसी ही होती है। जो अनाश्रित, बिना कर्मफल के आश्रित हो अपने कर्त्तव्य-कर्मों को निभाता है वही संन्यासी है, वही योगी है। इस प्रकार योगारूढ़ योगी के क्या लक्षण हैं?

**जितात्मनः(फ्) प्रशान्तस्य, परमात्मा समाहितः।**

**शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥6.7॥**

वैसे ही योगी को,

**समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः।**
**शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः॥**
**12.18**

जिस मनुष्य पर मान-अपमान, शत्रु-मित्र, शीत-उष्ण आदि परिस्थितियों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है। अब ध्यान के लिए उसे एकान्त में रहते हुए कर्मयोग का ही आचरण करना है। यह ध्यान की अवस्था कैसी होती है? यह भी श्रीभगवान् ने बताया।

अति खानेवाले को, न खानेवाले को, अति सोनेवाले को, अनिद्रा वाले को कभी योग सिद्ध नहीं हो सकता। युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त कर्म, सभी इन्द्रियों का युक्त आहार आदि का महत्त्व भी श्रीभगवान् ने बताया। तब ऐसे नियन्त्रण के उपरान्त उस योगी का चित्त कैसा हो जाता है?
स्थिरचित्त- जिसने चित्त पर विजय प्राप्त करली है, यह भी हमने देखा।

**यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा स्मृता।**
**योगिनो यतचित्तस्य, युञ्जतो योगमात्मनः॥**
**6.19**

योगी का चित्त गर्भगृह में रखे दीपक की बाती जैसा स्थिर हो जाता है। फिर योगाभ्यास करके योगी प्राणायाम, आसनों का अभ्यास करके लाभ उठाता है।

**तं(वँ) विद्याद् दुःखसंयोग, वियोगं(यँ) योगसञ्ज्ञितम्।**
**स निश्चयेन योक्तव्यो, योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ 6.23॥**

धैर्यपूर्वक, बिना उकताते हुए योगी को योग करना ही है। योगी जब योगसिद्ध हो जाता है तब उसे ध्यान करना सीखना होता है। यम-नियमों का पालन करना, मन, वाणी, विचारों से भी हिंसा नहीं करना, सत्य-वचन बोलना, ब्रह्मचर्य रखना, गृहस्थ हो तो एक-पत्नी-व्रत रखना, चोरी नहीं करना ये उसके व्रत होते है। उसके बाद उसे योगासनों से अपने शरीर और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना पड़ता है।

इसके बाद उसे प्राणायाम द्वारा अपने मन पर नियन्त्रण पाना होता है। फिर प्रत्याहार- अपनी इन्द्रियों को बाहरी विषयों की याद भी न आने देना।

जब वह ध्यान करता है तो उसे कैसे स्थान का चयन करना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए, स्थिर सुखासन, गर्दन, सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठने पर ही बारम्बार ध्यान किया जाता है।

जब योगी का सम्पूर्ण अन्तरङ्ग ही परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है, तब उस सुख से बढ़कर और कोई सुख उसको प्राप्त करने के लिये नहीं रह जाता। यह परम सुख बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाता है। एक बार इस सुख में स्थित होने के बाद कितना भी बड़ा दुःख का पहाड़  उस पर गिरता है तो भी वह विचलित नहीं होता।

**6.24**

**सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्, त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।**
**मनसैवेन्द्रियग्रामं(म्), विनियम्य समन्ततः॥24॥**

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं का सर्वथा त्याग करके (और) मन से ही इन्द्रिय-समूह को सभी ओर से हटाकर।

**विवेचन**: श्रीभगवान् कहते हैं- प्राणायाम के बाद योगी प्रत्याहार, इन्द्रिय-नियन्त्रण में लग जाता है।

**योग करने में हमारा चित्त उकताता क्यों है?**
इन्द्रियाँ बाहरी विषयों के प्रति आकर्षित रहती हैं। योग करके योगी उन्हें अन्तर्मुख करता है।

**सम्यक् कल्पते इति सङ्कल्पः**
अर्थात् किसी वस्तु, बाहरी विषयों के प्रति आकर्षण से जब मन में कामना निर्माण होती है। सङ्कल्प निर्मित कामनाएँ। सङ्कल्पों-विकल्पों के द्वारा निर्मित कामनाओं का अन्त करने को श्रीभगवान् यहाँ कह रहे हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यदि ध्यान करना है तो कोई भी कामना लेशमात्र भी मन में रहनी नहीं चाहिए- **अशेषता**। योगी इन्द्रियों को प्रति-आहार देता है। दिन में एक समय ऐसा हमें रखना है जब मन में कोई कामना नही रहती, यहीं ध्यान का उपयुक्त समय है। जब एक समय निश्चित कर निरन्तर ध्यान यदि कोई करता है तो सब इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगामें, अपने मन के द्वारा उसके वश में आ जाती है।

मन में जब निरन्तर अपने परमात्मा प्राप्ति के ध्येय का चिन्तन चलता रहता है तो योगारूढ़ योगी का मन स्वयं ही उसके बस में हो जाता है। मन जब ध्येय में लगा रहता है तो वह विषयों पर नहीं भटकता है। इससे इन्द्रियाँ भी बाहरी विषयों पर नहीं जाती और अन्तर्मुख हो जाती है। सङ्कल्प आता भी है तो कामना जाग्रत नहीं होती। मन किसी बाहरी विषय को देख कर, पहले सङ्कल्प करता है, फिर उसे पाने की कामना करता है।

योगी पहले योगासनों द्वारा शरीर पर नियन्त्रण, फिर मन द्वारा सारी इन्द्रियों पर विशेष रूप से नियन्त्रण, फिर बुद्धि द्वारा ही मन पर नियन्त्रण करता है। इसी को प्रत्याहार कहा गया है।

**माया हमें कामनाओं में उलझा कर रखती है।**
पहले चलचित्र, फिर दूर दर्शन और अब मोबाइल में हर कोई उलझा रहता है।

**मन पर नियन्त्रण कैसे लाना चाहिए? चित्त स्थिर कैसे हो?**
जब चित्त विषयों पर भटकना बन्द कर देता है तब योगी को क्या करना है?

**6.25**

**शनैः(श्) शनैरुपरमेद्, बुद्ध्या धृतिगृहीतया।**
**आत्मसंस्थं(म्) मनः(ख्) कृत्वा, न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥25॥**

धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा (संसार से) धीरे-धीरे उपराम हो जाय (और) मन (बुद्धि) को परमात्मस्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थापन करके (फिर) कुछ भी चिन्तन न करे।

**विवेचन**: अपने मन को अपने चित्त में धीरे-धीरे लगाकर रखना पड़ेगा। चञ्चल मन को अपनी धैर्यवान बुद्धि द्वारा निश्चयपूर्वक बताना होता है कि यही ठीक है और यही तुझे करना है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-

**त्या सुखाचि लागता गोडी, मन इच्छेचि स्मृतिच सोडि।**
**ऐरवि संसाराच्या तोंडी गुंतले असे।**

जो मन संसार में, अन्तरङ्ग में अटका रहता है, यदि एक बार उसे परमात्मा के सुख की मिठास चखने को मिल गई तो फिर मन को विषयों की छोड़ो, विषयों की इच्छा की भी याद उसे नहीं आती है।

**शनैः(श्) शनैरुपरमेद्,**
फिर मन को धीरे-धीरे अपनी बुद्धि द्वारा परमात्मा में लगाना है। बुद्धि मन से भी श्रेष्ठ है। यह बुद्धि धैर्ययुक्त होनी चाहिये।

जब बुद्धि को धैर्य का आश्रय मिलता है तब बुद्धि मन को अनुभूति लेने की प्रेरणा देती है। अब मन को उन परमात्मा में लगाना है। कुछ भी चिन्तन नहीं करना है। मन को इतना स्थिर करना कि वह किसी का भी चिन्तन न करे। किसी विग्रह में मन को लगाने का पहले प्रयास किया जाता है। तब उस विग्रह से आलम्बन लेकर, सहारा लेकर मन को उसमें केन्द्रित करना पड़ता है। परमात्मा में मन को स्थिर करने पर, मन बाहरी विषयों की ओर देखेगा भी नहीं। फिर परमात्मा प्राप्ति के अलावा दूसरे किसी का भी चिन्तन नहीं होना चाहिये। मन में जब ऐसे भाव आ जाते हैं या जब बुद्धि विश्लेषण करने लगे तब मन और बुद्धि के बीच में अपने ध्येय को रखे।

**इतना होने के उपरान्त भी जब मन भागता है तब क्या करना चाहिये?**

**6.26**

**यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्।**
**ततस्ततो नियम्यैतद्, आत्मन्येव वशं(न्) नयेत् ॥26॥**

(यह) अस्थिर (और) चंचल मन जहाँ-जहाँ विचरण करता है, वहाँ-वहाँ से हटाकर इसको (एक) परमात्मा में ही भली भाँति लगाये।

**विवेचन**: मन का गुणधर्म अस्थिरता है। **जिन-जिन विषयों पर मन भटकता है उसे वहाँ से बार-बार खीञ्चकर लाना चाहिए।**

**ततस्ततो नियम्यैतद्**

जिस प्रकार बार-बार घर से बाहर जानेवाले नटखट बालक को माँ बार-बार प्रेमपूर्वक खीञ्चकर घर के भीतर लेकर आती है, उसे रमाती है, बालक फिर दौड़ का बाहर जाने का प्रयास करता है। ठीक वैसे ही हमें अपने भटकते मन को प्रेम पूर्वक फिर से बार-बार विषयों से निकाल कर परमात्मा के ध्यान में, परमात्मा-प्राप्ति के ध्येय में लगाना है-

**यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्।**

हम प्रभु राम का ध्यान कर रहे है और हमारा मन कहीं ओर दौड़ लगा रहा है। उसे प्रेमपूर्वक खीञ्चकर वापस ध्यान में लगाना है।

**ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं**
**पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् । वामांकारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं**
**नानालंकार दीप्तं दधतमुरुजटामंडलं रामचंद्रम ।**

जिन क्षणों में ध्यान के लिये बैठना है उस समय मन पर नियन्त्रण कर के उसे हमें विषयों के पीछे भागने से रोकना है।

**आत्मन्येव वशं(न्) नयेत् ।**

**परमात्मा का जो रूप हमें प्रिय है उसमें ध्यान लगाना।**
सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते है पहले अपनी बुद्धि को धैर्य का आश्रय देना, धैर्ययुक्त बुद्धि से उसे रोकने का प्रयास करना। तब बुद्धि मन को अपने ध्येय की ओर लगाने का प्रयत्न करती है। फिर वह धैर्ययुक्त बुद्धि मन को प्रस्थापित् करती है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहतें हैं-

**साधके एक नियम धरावा ते जीवे भावे पाळावा।**
**कृत निश्चय न मोडावा कदापि।।**

**मन को स्थिर, निरुद्ध करने के लिए साधक को कोई भी एक नियम धारण करना चाहिए।**

**कुछ भी हो जाए, उस नियम का पालन दृढ़ता पूर्वक करना।**

**उस नियम को कभी भी खण्डित न होने देना।**

**हम छोटे-छोटे नियम ले सकते हैं।**

जब हम नियम धरते है तब हमें मालूम पड़ता है की एक छोटे से नियम के पालन में कितने व्यवधान आते हैं। **ऐसे निश्चय से क्या होता है?**

जब सङ्कल्प धारण कर लिया तो **कृत निश्चय न मोडावा कदापि,** फिर उस नियम को टूटने न देना।

एक छोटासा नियम भी मन को खीच कर नियमबद्ध करता है। साधक को छोटे-छोटे नियमों से शुरुवात करनी चाहिए।
शादी के बाद  सास ने अपनी नई बहू से कहा कि एक छोटा नियम रखो की नित्य प्रातः स्नानोपरान्त तुलसी माता को जल चढाना। साधारण नियम है, पर जब उसका पालन करने लगते है तब मालूम पड़ता है की एक छोटे नियम का पालन भी कितना कठिन होता है।

**इस तरह की नियम-बद्धता से क्या प्राप्त होता है?**

**6.27**

## प्रशान्तमनसं(म्) ह्येनं(म्), योगिनं(म्) सुखमुत्तमम्।
## उपैति शान्तरजसं(म्), ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥27॥

जिसके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है (तथा) जिसका मन सर्वथा शान्त (निर्मल) हो गया है, (ऐसे) इस ब्रह्मरूप बने हुए योगी को निश्चित ही उत्तम (सात्त्विक) सुख प्राप्त होता है।

**विवेचन**: श्रीभगवान् कहते हैं, **नियम धारण करने से मन स्थिर और शान्त होने लगता है।**

**प्रकर्षेण शान्तः, इति प्रशान्तः।**

मनुष्य के रजोगुण उसे विषयों के पीछे दौड़ाते रहते हैं। **योगारूढ़ योगी जब ध्यान में रम जाता है तो उसका मन शान्त होने पर उसके रजोगुण भी कम होने लगते है व सत्त्वगुण बढ़ने लगते हैं।**

मनुष्य को अपने रजोगुणों का उपयोग प्रभु द्वारा उसे सौंपे हुए कार्य समझकर, फल रहित समाज-कार्य करने में अपनी बुद्धि, मन और तन को लगाने से तमोगुणों का सदुपयोग होता है। इस प्रकार रजोगुणों से ही रजोगुणों का अन्त करना चाहिए। इस प्रकार किये कार्य को हमें परमात्मा को अर्पण करते जाना है।

**मनुष्य शान्ति कब प्राप्त कर सकता है?**
क्या बहुत पैसा पाने पर, या सुख-सुविधाओं से?

**Ultimate peace comes not when one earns more or when he gets what he wants but when he wants no more.**

**अन्तिम, सवोच्च शान्ति पैसें, सुख सुविधाओं से नहीं**
**अपितु इच्छा-रहित होने पर प्राप्त होती है।**

**जब योगी इच्छा रहित हो कर, ध्यान द्वारा अपने मन को प्रशान्त कर लेता है तब उसे परम् शान्ति की अनुभूति होती है।**

**ब्रह्मभूतमकल्मषम्,**
अब योगी के मन में कोई पाप नहीं आता है। वह परमात्मा के साथ एकरूप होने लगता है, ब्रह्मभूत हो जाता है।

**हम कहाँ रहते है?**
**जहाँ हमारा मन, चित्त होता है वहाँ ही हम रहते है न कि जहाँ हमारा शरीर होता है वहाँ।**

**यदि हमारा मन परब्रह्म में लग जायेगा तो हम भी परब्रह्म में रहने लगेंगे।**

**जब योगी परब्रह्म में स्थित हो जाता है तो अत्यधिक परम् सुख उसे प्राप्त होता है।**

**सर्व चित्त ब्रह्मलीन होणे आणि सर्वत्र चैतन्य दिसणे।**

उसे अपने चारों ओर परब्रह्म ही दिखने लगता है। **योगी ब्रह्मलीन रहता है तो उसे सर्वत्र और सबमें परमात्मा तत्त्व ही दिखने लगता है।**

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, इन उपायों के द्वारा इस सुख की प्राप्ति होती है।

**ऐसी प्राप्ति या उपायाने जे सुखे होते।**
इन उपायों से योगी को परम सुख की प्राप्ति होती है।

**6.28**

## युञ्जन्नेवं(म्) सदात्मानं(म्), योगी विगतकल्मषः।
## सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तं(म्) सुखमश्नुते॥28॥

इस प्रकार अपने आपको सदा (परमात्मा में) लगाता हुआ पाप रहित योगी सुखपूर्वक ब्रह्म प्राप्ति रूप अत्यन्त सुख का अनुभव कर लेता है

**विवेचन**: जब योगारूढ़ योगी:-

योगाभ्यास को निरन्तर, प्रतिदिन करता है, उसके मन, चित्त में पाप का विचार तक नहीं आता है तो उसे सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम्, तब उसे परमात्मा की प्राप्ति का अच्छे से संस्पर्श से स्पर्शानुभव का अत्यन्तिक सुख मिलता है, जिसके फलस्वरूप अब उसे बाहरी सुखों, विषयों का स्मरण तक नहीं आता है।

सन्त ज्ञानेश्वर माउली बहुत सुन्दर उपमा देकर इसे समझाते हैं-

**लवण जैसे जळी मिळाले ते न होई वेगळे ।**
**तैसे होत असे त्यावेळी मज् सामर्थ्याच्या वास् स्थळी ।।**
**महा सुखाची आली दिवाळी जगास् दिसे।।**

जैसे नमक जल में घुलकर जलमय हो जाता है वैसे ही:-
**योगारूढ़ योगी ध्यान द्वारा, पाप रहित होकर ब्रह्मसंस्पर्शम्, ब्रह्ममय हो जाता है।**

**उस परमात्मा के साथ समरस, एकरूप योगी को और परमात्मा को विभक्त करके देखना असम्भव होता है।**

जिस प्रकार हमारा मन दिवाली में आनन्द, उल्लास में रहता है वैसी स्थिति में वह योगी सतत रहता है, परमानन्द स्थिति में स्थित।

**अब उस योगी की स्थिति कैसी होगी? उसका व्यवहार कैसा होगा?**

श्रीभगवान् आगे बताते हैं।

**6.29**

**सर्वभूतस्थमात्मानं(म्), सर्वभूतानि चात्मनि।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शनः॥29॥**

सब जगह अपने स्वरूप को देखने वाला और ध्यानयोग से युक्त अन्तःकरण वाला (सांख्ययोगी) अपने स्वरूप को सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित देखता है (और) सम्पूर्ण प्राणियों को अपने स्वरूप में (देखता है)।

**विवेचन: ऐसे योगयुक्त, योगारूढ़ और ध्यानमग्न योगी की दृष्टि ही दिव्य और तीक्ष्ण हो जाती है और उसे सर्व भूतमात्र में परमात्मा का ही दर्शन होने लगता है। सारा संसार ही परमात्मामय है। वह यह देख लेता है, समझ लेता है।**

जब हम यह समझ जायेंगे कि सामनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर परमात्मा स्थित हैं, तभी हम अपने हृदय में बसे परमात्मा के दर्शन कर पाएँगे। यह मानव जीवन का एक सत्य है जिसे स्वीकार करना साधारण मनुष्य के लिए भले ही कठिन प्रतीत होता हो, एक योगयुक्त योगी के लिए उतना ही सरल, उसे तो **सर्वत्र समदर्शन की अनुभूति होती है।**

नारायण-नारायण करते रहने वाले भक्त प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यपु ने गुस्से से भरकर उनसे पूछा- कहाँ है तेरा नारायण?

योगी प्रह्लाद बोले, वे तो सर्वत्र व्याप्त हैं। पिता ने फिर पूछा, तो क्या इस खम्भे में भी है? वे बोले हाँ, खम्भे में भी नारायण हैं। एक योगी सर्वत्र परमात्मा को ही देखता है।

सन्त एकनाथ महाराज कावड में गङ्गाजल भर कर जब रामेश्वरम् पहुँचे तो राह में उन्हें एक गधा प्यास से तड़पता हुआ दिखा, उन्होंने तुरन्त इतनी दूर से लाया हुआ गङ्गाजल उस तड़पते गधे को पिला दिया। लोगों ने कहा, ये क्या किया? आपने इतनी दूर

से लाया गङ्गाजल इस गधे को पिला दिया! तो एकनाथ महाराजजी ने उत्तर दिया गधा कहाँ, ये तो रामेश्वरम् जी हैं?

**सन्त योगी को सर्वत्र और सभी में केवल और केवल परमात्मा ही दिखाई पड़ते हैं।**

स्वामी विवेकानन्दजी का एक बहुत लोकप्रिय वाक्य है-
**"मैं उस परमात्मा का सेवक हूँ जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते है।"**

जिन्हें हम मनुष्य समझते है उनमें स्वामी विवेकानन्दजी को परमात्मा दिखते हैं। वे उस परमात्मा की सेवा में लग जाते थे।

भगवन्-विग्रह में हमें एकचित्त होना होगा। **परम पूज्य स्वामीजी कहते हैं-**
**"जब भी किसी मन्दिर में जाओ तो विग्रह में सम्पूर्ण संसार को देखने का प्रयत्न करो और जब मन्दिर से बाहर आओ तो बाहर के प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जीव-जन्तु, प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक पेड़-पौधों में उस विग्रह के दर्शन करो।"**

**कितनी बड़ी और सुन्दर बात को इतनी सरलता से स्वामीजी कह गए। परमात्मा तत्त्व को समझने के लिये हमें इस बात को प्रत्यक्ष में लाना होगा। यह सच्चा दर्शन है।**

स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी को जब बचपन में उनके भाई ने मन्दिर में ले जाकर कहा कि ये माँ है, तुम्हे इनकी सेवा करनी है। तब से उन्हें वह विग्रह कभी मूर्ति लगा ही नहीं। वें उसे माँ ही समझते और सेवा करते बातें करते, भोग लगाते।

मीरा बाई को भी मूर्ति में भगवान् श्रीकृष्ण ही दिखाई देते थे। यह दर्शन है, **विग्रह से एकरूप हो कर सर्वत्र, सबमें, सब जगह केवल परमात्मा को ही देखना।**

सन्त नामदेव महाराज एक बार एक पेड़ के नीचे भोजन करने बैठे तो कुत्ता एक रोटी ले कर भागा। नामदेवजी हाथ में घी की कटोरी ले कर उसके पीछे भागे-
**"रुक जा, रोटी पर घी तो लगाने दे।"**

इस प्रकार सब सन्त-महात्मा सभी चराचर में परमात्मा को ही देखते हैं।

**6.30**

**यो मां(म्) पश्यति सर्वत्र, सर्वं(ञ्) च मयि पश्यति।**
**तस्याहं(न्) न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति॥30॥**

जो (भक्त) सब में मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

**विवेचन**: श्रीभगवान् कहतें हैं कि इस अवस्था में जब योगी पहुँच गया तो उसमें यही भाव जागृत रहता है कि मुझे (भगवान् को) सर्वत्र देखना है और मुझमें (भगवान् में) सर्वत्र (सर्व संसार) देखना है।

श्रीभगवान् कहते हैं-
**तस्याहं(न्) न प्रणश्यामि**
ऐसे व्यक्ति की आँखो से मैं कभी भी ओझल नहीं होता। **उसे मैं ही सर्वत्र दिखता रहता हूँ।** जिसे सर्वत्र परमात्मा ही दिखते हों, उसके सामने से परमात्मा कभी ओझल हो सकते हैं भला?

**स च मे न प्रणश्यति-**

**ऐसे भक्त योगी को मैं भी सदैव देखता रहता हूँ। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि श्रीभगवान् स्वयं कह रहे है कि ऐसा योगी मेरी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता। उसे मैं सदा-सर्वदा देखता रहता हूँ।**

सन्त ज्ञानेश्वर महाराजजी कहते हैं-

**प्रकाश आणि दीपक ज्याची योग्यता जैसी एक,**
**तसे त्याचे माझे एकमेव ऐसे स्थान।**

जैसे प्रकाश और दीपक एक ही हैं वैसे ही वह योगी और परमात्मा एक ही हैं। जो परमात्मा के साथ एकरूप हो गया, अभिन्न हो गया, वह ध्यान की सर्वोच्च अवस्था में पहुँच गया।

**ऐसे योगी का वर्तन, व्यवहार कैसा होता है?**
**क्या वह सदा ध्यान में ही रहता है?**

**6.31**

**सर्वभूतस्थितं(म्) यो मां(म्), भजत्येकत्वमास्थितः।**
**सर्वथा वर्तमानोऽपि, स योगी मयि वर्तते॥31॥**

(मुझमें) एकीभाव से स्थित हुआ जो भक्तियोगी सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित मेरा भजन करता है, वह सब कुछ बर्ताव करता हुआ भी मुझ में (ही) बर्ताव कर रहा है अर्थात् वह नित्य निरन्तर मुझमें ही स्थित है।

**विवेचन**: योगी ध्यान में रहे या न रहे, उसे सर्वत्र परमात्मा का दर्शन होता रहता है, वह योगी कैसा होता है? यह श्रीभगवान् बताते हैं-

वह सारे भूत मात्र में स्थित मुझे भजता रहता है, मेरी सेवा-पूजा करता रहता है, **भज् सेवायाम**। सर्व चर-चराचर में मुझे स्थित देख, संसार में सबकी सेवा करता रहता है।

**सर्व भूतहितेरता:,**
**यह भगवद्गीताजी का महामन्त्र है।**

**रात्रे एकचि धर्म जगाला प्रेम अर्पावे।**

**परमात्मा से प्रेम करना है तो सबसे प्रेम करना, सबके कल्याण के लिए कार्यरत् रहना। यही परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ आराधना है, सर्वश्रेष्ठ सेवा है। यह केवल तब होता है जब व्यक्ति को सबमें परमात्मा दिखने लगते हैं।** नहीं तो जब कोई साधारण मनुष्य समाज सेवा करता है तो उसमें यह भाव रहता है कि मैं बड़ा हूँ और मुझसे छोटे लोगों की मैं सेवा कर रहा हूँ। मैं दीन-दु:खियों की मदद करता हूँ, इस भाव से अहङ्कार आ जाता है। जिसको सर्वत्र और सबमें ही परमात्मा दिखाई देते हैं, वह मैं परमात्मा की पूजा कर रहा हूँ, सेवा कर रहा हूँ, इस भाव से सर्भूवतहितेरता: रहता है।

ऐसा व्यक्ति यहीं सोचता है कि परमात्मा मुझसे सेवा लेने के लिए आए हैं। इनके कारण मुझे प्रभु-सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। इस भाव से की हुई सेवा ही सच्ची सेवा है।

**सर्वथा वर्तमानोऽपि,**
यह योगी सामान्य व्यवहार करते हुए भी दिखता है।

**जैसा पणती एक वस्त्रात्...**

ऐसा एक ही तन्तु, धागे से वस्त्र बनता है वैसे ही एक ही परमात्मा से यह सम्पूर्ण विश्व निर्मित है।

जैसे सुनार को अलङ्कारों में केवल स्वर्ण ही दिखता है वैसे ही ऐसे उन्नत योगी को भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के प्राणीमात्र, वस्तुएँ, पेड़-पौधें, जीव आदि दिखने पर भी उनमें केवल आत्मतत्त्व दिखता है, परमात्मा ही दिखते हैं।

**6.32**

**आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं(म्) पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं(म्) वा यदि वा दुःखं(म्), स योगी परमो मतः॥32॥**

हे अर्जुन ! जो (भक्त) अपने शरीर की उपमा से सब जगह (मुझे) समान देखता है और सुख अथवा दुःख को (भी समान देखता है), वह परम योगी माना गया है।

**विवेचन**: श्रीभगवान् बतातें हैं कि वह परम योगी है:-
**-जो दूसरों के सुख देखकर ही सुखी हो जाता है,**
**-जो दूसरों के दुःख को देख कर व्यथित हो जाता है।**
**-दु:खियों के दुःखों को हरने का प्रयास करता है।**

उपरोक्त लक्षण एक परम योगी के लक्षण हैं।

एक चुटकुला है, तात्या, नाना दो पड़ोसी थे। दोनों में छत्तीस का आँकड़ा था। दोनों की पटती नहीं थी। एक बार तात्या को बहुत खुश देखकर उनके एक अन्य मित्र ने कारण पूछा, तो तात्या बोले, मेरे पड़ोसी नाना को लॉटरी लग गई। उस मित्र ने पूछा इससे आप इतने खुश क्यों हो रहे हैं? तो तात्या बोले उसका टिकिट गुम हो गया है। उनकी खुशी टिकिट गुम हो जाने की थी।

भेद-दृष्टि के कारण मनुष्य का स्वभाव, व्यवहार एक दूसरे के साथ ज्यादातर इस प्रकार का होता है। सबके प्रति समत्व का भाव लाना एक उन्नत आत्मा द्वारा ही सम्भव है, साधारण मनुष्य द्वारा नहीं। हमें परम योगी की तरह समत्व रखना सीखना है।

जिस प्रकार हमारे शरीर में प्रत्येक इन्द्रिय भिन्न होती है, उनके कार्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय के साथ हमारा व्यवहार भी भिन्न होता है, परन्तु सब इन्द्रियों के प्रति हमारा एकत्व का भाव रहता है कि ये इन्द्रियाँ मेरी हैं, बिलकुल वैसे ही **एकत्व का भाव सर्व विश्व के प्राणिमात्र के प्रति उस उन्नत योगी का रहता है। परमात्मा से एकत्व होने पर ही यह सम्भव होता है।**

**जैसे व्यवहार की हम अपेक्षा करते हैं, वैसा ही व्यवहार उसे सबके साथ करना चाहिये।**

श्रीभगवान् ने इतनी बात कह दी कि ऐसा योगी साक्षात् परमात्मा ही होता है, तो अर्जुन के मन में प्रश्न उठता है-

"इस प्रकार समत्व की भावना मन में आना इतना सरल है क्या?"

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से क्या प्रश्न पूछते है, यह हम अगले सत्र में देखेंगे। इस कथन के साथ आज का विवेचन समाप्त हुआ। इसके उपरान्त साधकों के प्रश्नोत्तर लिये गए।

**प्रश्नोत्तर**

**प्रश्नकर्ता**- नारायण सिंह भैया
**प्रश्न-** ध्यान करते हैं तो नींद जैसे झटके क्यों आते हैं?
**उत्तर**- हमारी यह क्रिया ध्यान नहीं, अपितु ध्यान का अभ्यास है। चित्त की वृत्तियों के कारण इसमें व्यवधान उत्पन्न होता है। नींद पूरी न होने से नींद आती है। अधिक नींद ले लेने के पश्चात् अभ्यास करने से भी नींद आ सकती है, इसलिए श्रीभगवान् ने बताया है -

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**
**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ 6:17**

जब नींद खुल जाती है तो नींद पूरी हो जाती है। उसके बाद भी बिस्तर पर पड़े रहते हैं तो दोबारा नींद आ जाती है। कुछ जलपान करके बैठें तो भी नींद आती है। अभ्यास से ही नियन्त्रण पा सकते हैं-

**शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।**
**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ 6:25॥**

नींद न आये इसके लिए भी श्रीभगवान् ने बताया है-

**समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।**
**सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ 6:13॥**

आँखें बन्द करके ध्यान नहीं करना है। आँखें बन्द करने से नींद आती है। अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए, अपने ध्येय का ध्यान करना है।

**प्रश्नकर्ता**- मालती पवार दीदी
**प्रश्न-** आराध्य देव का विनिश्चय कैसे करें?
**उत्तर**- जिनकी ओर आपका ध्यान आकर्षित हो, वे आपके आराध्य देव हैं। अलग-अलग देवताओं का ध्यान करते हैं, जिन देवता पर ध्यान टिक जाये, वही आराध्य हैं। हमें अलग अलग देवता अच्छे लगते हैं, क्योंकि हमारी कामनाएँ होती हैं। सङ्कट में गणेश जी को याद करते हैं-

**वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ।**
**निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥**

बल के लिए हम हनुमान जी को याद करने लगते हैं। परीक्षा के समय सरस्वती माता की याद आने लगती है। धन-सम्पत्ति की आवश्यकता हो तो लक्ष्मी जी का स्मरण करते हैं। कामनाओं के कारण हम भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की उपासना करते हैं। यह गलत नहीं है। श्रीभगवान् ने स्वयं बताया है-

**यो यो यां यां तनुं भक्त: श्रद्धयार्चितुमिच्छति।**
**तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥7:21॥**

जिस भी देवरूप की उपासना हम कर रहे हैं, वह परमात्मा का ही स्वरूप है, अलग नहीं है। परमात्मा गणेश जी के रूप में मुझ पर प्रसन्न हो जाएँगे। परमात्मा सरस्वती जी के रूप में मुझ पर प्रसन्न हो जाएँगे। यही भाव रखकर आराधना करनी चाहिये।

**त्वमेव प्रत्यक्षं तत्वमसि ।।**
**त्वमेव केवलं कर्तासि ।।**
**त्वमेव केवलं धर्तासि ।।**
**त्वमेव केवलं हर्तासि ॥**
**त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि ।।**
**त्वं साक्षादात्मासि नित्यम् ।।**

सारे परमात्मा के ही रूप हैं, उनमें भेद दृष्टि नहीं रखना। स्वयं परमात्मा ही उनमें हमारी श्रद्धा स्थापित करते हैं। ये परमात्मा के ही अलग-अलग रूप हैं।

**प्रश्नकर्ता**- ललितेश भैया
**प्रश्न-** योग की प्रारम्भिक अवस्था क्या होती है?
**उत्तर**- स्वयं पर नियन्त्रण लाना योग की प्रारम्भिक अवस्था है। यम और नियम स्वयं पर नियन्त्रण लाते हैं। योगाभ्यास आरम्भ में आहार-विहार पर नियन्त्रण करने से होता है। आसनों के अभ्यास से हम अपने शरीर पर नियन्त्रण लाना सीखते हैं।

जनार्दन स्वामी कहते हैं-
आप पहले आसान करना आरम्भ कर दो, यम-नियम अपने आप आ जाएंगे। आसान के अभ्यास से शरीर पर और प्राणायाम करने से मन पर नियन्त्रण आने लगता है।

अष्टाङ्गयोग के आठ सोपान हैं-

**1- यम 2- नियम 3- आसन 4- प्राणायाम 5- प्रत्याहार 6- धारणा 7- ध्यान 8- समाधि**

---

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

---

**|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||**
**||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||**

Sum-Hi-6(3_4)-SW-L3Jan25-130725/7438/v3/250717-1510